बदलते मौसमों के अनुरूप कृषि नीतियां

सुलोचना गाडगिल और पी.आर. शेषगिरि राव

पिछले पचास सालों में भारत के खाद्यान्न उत्पादन में तेज़ी से हुई बढ़ोत्तरी का ताल्लुक छठे दशक में शुरू हुई हरित क्रान्ति से है। यह बढ़ोत्तरी मुख्यतः उन सिंचित क्षेत्रों में हुई है जहां नए तरह की बौनी, उर्वरक पर आधारित किस्में उगाई गईं। देश को खाद्यान्न की कमी की दिशा से उबारकर लगभग आत्मनिर्भरता की दशा में पहुंचाने का श्रेय इस बढ़ोत्तरी को दिया जा सकता है। इस अवधि के दौरान जनसंख्या में हुई तीव्र वृद्धि के बावजूद खाद्यान्न की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में कोई अन्तर नहीं आ सका। हालांकि पिछले दस सालों में हरित क्रांति में आई शिथिलता से खाद्यान्न के उत्पादन में भी वैश्विक और राष्ट्रीय दोनों स्तरों पर गिरावट आई है। इसीलिए अनाज की प्रति व्यक्ति उपलब्धता के उचित स्तर को सुनिश्चित करने के लिहाज़ से यह अनिवार्य हो गया है कि वर्षा सिंचित इलाकों में उत्पादन को बढ़ाया जाए।

खाद्यान्न के उत्पादन पर मौसम (खासकर मानसूनी बारिश) के परिवर्तन का असर लगातार पड़ा है। इसीलिए कम वर्षा वाले सालों में उत्पादन बहुत कम हो सका। हरित क्रांति के बावजूद भारतीय अर्थव्यवस्था 'मानसून का जुआ' ही बनी रही। सिंचित क्षेत्रों के उत्पादन में तो तेज़ी से बढ़ोत्तरी होती रही लेकिन उसी दौरान वर्षा पर निर्भर उन क्षेत्रों का विकास धीमा ही रहा जिन पर देश के कुल अनाज उत्पादन का आधे से ज़्यादा हिस्सा टिका हुआ है। नतीजतन वर्षा-सिंचित फसलों (दालों) की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में काफी कमी आ गई है। वर्षा पर निर्भर क्षेत्रों की पैदावार को बढ़ाने के लिए खेती के ऐसे तरीकों की खोज ज़रूरी हो गई है जिनके सहारे (मौसम में आने वाले उतार-चढ़ाव के बावजूद) इन क्षेत्रों में उत्पादन की दर को बढ़ाया और कायम रखा जा सके।

हरित क्रांति में कृषि-विज्ञान, खासकर जिनेटिक्स के क्षेत्र में हुए विकास की खासी भूमिका रही। उच्च पैदावार वाली किस्मों के चुनाव और उस पर उर्वरकों और कीटनाशकों के समुचित उपयोग वाला 'ग्रीन रिवॉल्यूशन पैकेज' कृषि वैज्ञानिकों की प्रयोगशालाओं और क्रियान्वयन-केन्द्रों पर तैयार किया गया था। यह जानकारी का सफलता पूर्वक 'प्रयोगशाला से खेत तक' पहुंचने का नतीजा ही था कि शुरू के बीसेक सालों में पैदावार में खासी बढ़ोत्तरी हुई।

दूसरी तरफ वर्षा-सिंचित क्षेत्र में पचासेक सालों के शोध और विकास सम्बंधी प्रयत्नों के बावजूद पैदावार धीमे-धीमे ही बढ़ पाई। अनुसंधान केन्द्रों की पैदावार और किसानों के खेतों की पैदावार के बीच का फासला बढ़ता चला गया (देखें चित्र 1)। स्वामीनाथन के अनुसार - *आम तौर पर अनुसंधान केन्द्रों के कार्यक्रम किसानों की बजाय वैज्ञानिकों की ओर उन्मुख रहे हैं। ये कार्यक्रम वैज्ञानिकों द्वारा ही विचारित, नियोजित व क्रियान्वित होते हैं; वही उनकी देखरेख करते हैं और वही मूल्यांकन। नतीजे ऊपर से नीचे की ओर भेजे जाते हैं। किसान इसमें एक निष्क्रिय भागीदार भर होते है। ज़मीन के छोटे टुकड़ों और अल्पावधि खोजों से उपजी इन वैज्ञानिक उपलब्धियों (या तथाकथित तकनीकों) का कोई ताल्लुक लागत और लाभ के ज़रूरी हिसाब से नहीं होता।*

बारिश की कमी के सालों में भी किसान यथासम्भव ठीक नतीजे लाते रहे हैं (देखें चित्र 1)। दूसरी तरफ,